IJAER/March-April 2015/Volume -4/Issue-2 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

प्रेमचन्द के उपन्यासों का स्वराज्यगत् वैशिष्ट्य और प्रासंगिकता

डॉ.लालचन्द कहार
व्याख्याता (हिन्दी विभाग)
राजकीय महाविद्यालय कोटा (राज.)

सारांश

प्रेमचन्द हमारी व्यवस्था के दोशों की सूक्ष्म छानबीन कर, उसके आन्तरिक जाल को समझ कर उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए थे और अपने समस्त उपन्यासों में प्रेमचन्द ने कही भी स्वतंत्रता का नारा नहीं दिया है। उनके उपन्यासों के पात्र–सूरदास, विनय सिंह, अमरकांत, षांति कुमार प्रेमशंकर, चक्रधर तथा होरी स्वतंत्रता के लिए संघर्श नहीं करते। उनका सारा संघर्श किसानों की लगान छुड़वाने, गरीबों को अच्छा मकान दिलाने, उनको जाग्रत करने, सबको समान अधिकार, सम्मान तथा अवसर दिलाने का है। प्रेमचन्द ने उपन्यासों में भारतीय समाज की एक–एक समस्या का अंकन कर जन–जाग्रति और जन क्रांति का माहोल पैदा करने का प्रयास किया था।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्त स्वराज्य की अवधारणा और आकांक्षा की प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि जो समस्याएं प्रेमचन्द ने हमारे सामने रखी थी क्या आजादी मिल जाने से उन सभी समस्याओं को हमने हल कर लिया है? क्या भारत का आम आदमी लोकतंत्र के वास्तविक सुख का भोग कर पा रहा है? क्या स्त्री और पुरूश के लिए समान सामाजिक और नैतिक मानदण्ड स्थापित हो गये हैं? क्या दहजे प्रथा, विवाह की समस्या, स्त्री की आर्थिक परवशता समाप्त हो गयी है? क्या वेष्यावृत्ति समाप्त हो गई है? क्या किसानों को न्याय मिल पा रहा है? क्या हमने सांप्रदायिकता की समस्या का हल निकाल लिया है? क्या अंग्रेजी भाशा का प्रभुत्व समाप्त हो गया है? क्या दलितों को सामाजिक न्याय, समानता और सम्मान मिल पा रहा है? क्या राजनेताओं के स्वार्थ की काली छाया राजनीति से दूर हो गयी है? क्या आम आदमी शोशण और अत्याचार से मुक्त हो गया है? जब हम इन सवालों का सामना करते हैं तो पाते हैं कि प्रेमचन्द के उपन्यासों में उठाई गयी समस्याएं समाज में आज भी हैं। अतः कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के उपन्यास, उपन्यासों निहित चेतना और विचार स्वराज्य संस्थापन के लिए पूर्ण प्रासंगिक है।

कुंजी शब्द : उपन्यास, स्वराज्य, स्वतंत्रता, जनतंत्र, सामाजिक लोकतंत्र, शासन, सुशासन।

भूमिका

प्रेमचन्द का साहित्य न केवल परतंत्र कालीन भारत का नक्शा है बल्कि उसमें भारत की आत्मा की वास्तविक आवाज मौजूद है। उन्होंने भारत की आत्मा को गावों में, सामान्य जन, साधारण में, किसान, मजदूर, श्रमिक, शोषित, पीड़ित जनता में देखी हैं और वहीं आत्मा सामंतवाद, पूंजीवाद, जमींदारी, पुलिस, सूदखोर–महाजन और न्याय व्यवस्था के नीचे दब कर कराह रही है या यों कहें कि सारा प्रशासनिक तंत्र ही गरीबों का खून चूसने वाला है, सारी व्यवस्था इस तरह कायम की जाती है कि पसीना गरीब मजदूर का बहें और घर अमीरों का भरता रहे। अमीर, पूंजीपति, सेठ, साहूकार सूद और ऋण से गरीबों के घर तबाह किये जा रहे थे। प्रेमचन्द के लिए स्वराज्य का अर्थ आम जनाता के शासन से हैं, आम जनता को साम्राज्यवादी शोषण और शिकंजे से मुक्त होने से हैं। उनके लिए स्वराज्य से तात्पर्य एक ऐसे राज्य से है जिसमें कि आम जनता शोषण मुक्त होकर और समानता के साथ समाज में रह सके। प्रेमचन्द ने आम जनता– खास कर किसानों को सामंतवादी षोशण और स्त्री को सामंती संस्कारों की जकड़न से मुक्त करने के लिए आवाज उठायी थी। इस सामंतवादी साम्राज्यवादी और शोषण पर आधारित शासन से आम जन को मुक्ति दिलाना प्रेमचन्द का मूल उद्देश्य था। उनके उपन्यासों में आम जन की जबरदस्त हिमायती हुई है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्वराज्य का सवाल

प्रेमचन्द के उपन्यासें का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि उनके उपन्यासों का सम्पूर्ण प्रयास मात्र स्वराज्य–सुराज की स्थापना के निमित्त मात्र हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द ने मात्र प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने वाली सबसे बड़ी समस्या– परतंत्रता को ही सारे पतन और विनाश का कारण नहीं बताया है। हम और हमारी व्यवस्था तथा हमारी मानसिकता को भी इसकी सबसे बड़ी वजह माना है। नरेन्द्र कोहली ने ठीक ही लिखा है कि ''प्रेमचन्द का काल स्वातंत्र्य काल था। कोई भी लेखक राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, जनतंत्र अथवा समाजवाद का नारा लगाकर स्वयं को महत्वपूर्ण सिद्ध कर सकता था। परतंत्रता और राष्ट्रीयता का बना बनाया नुसखा सर्वसुलभ और सरल था। प्रत्येक व्यक्ति बिना कोई शंका किये, बिना कोई तर्क दिये सुविधा से यह स्वीकार कर लेता था कि इस देश की प्रत्येक बीमारी का एकमात्र कारण इसकी परतंत्रता है। जिस दिन अंग्रेज यहाँ से चले जायेंगे और देश स्वतंत्र हो जायेगा, उसी दिन एक चमत्कार होगा; सब कुछ परिवर्तित हो जायेगा। यहाँ रामराज्य स्थापित होगा और प्रत्येक भारत वासी सुखी हो जायेगा। किन्तु प्रेमचन्द शायद आरम्भ में ही समझ रहे थे कि केवल स्वतंत्रता से सब बीमारियाँ दूर नहीं होगी।''

अतः यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द हमारी व्यवस्था के दोशों की सूक्ष्म छानबीन कर, उसके आन्तरिक जाल को समझ कर उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए थे और अपने समस्त उपन्यासों में प्रेमचन्द ने कही भी स्वतंत्रता का नारा नहीं दिया है। उनके उपन्यासों के पात्र–सूरदास, विनय सिंह, अमरकांत, शांति कुमार प्रेमशंकर, चक्रधर तथा होरी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहीं करते। उनका सारा संघर्ष किसानों की लगान छुड़वाने, गरीबों को अच्छा मकान दिलाने, उनको जाग्रत करने, सबको समान अधिकार, सम्मान तथा

अवसर दिलाने का है। प्रेमचन्द ने उपन्यासों में भारतीय समाज की एक–एक समस्या का अंकन कर जन–जाग्रति और जन क्रांति का माहोल पैदा करने का प्रयास इस प्रकार किया है कि अन्याय करने वाला स्वयं ही अपने अत्याचारी स्वरूप को पहचान कर, अन्याय के मार्ग को छोड़ने को विवश हो जाये लाला समरकांत को उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं।

प्रेमचन्द तर्क के साथ आगे बढ़ते हैं और बुराइयों को तर्क के द्वारा खण्डित करते चलते हैं, पात्र मानवीय भावना से युक्त होकर स्वतः ही सही मार्ग पर आ जाते हैं या फिर अंतिम अस्त्र जन क्रांति तो है ही सही, चाहे फिर मन्दिर प्रवेश का मामला हो या गरीबों के आवास का मामला हो, लगान का हो या लगान इजाफा का हो। कई बार किसानों की क्रांति चेतना अत्याचारों के खिलाफ लड़ कर सफलता प्राप्त करती है। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द कहीं भी रूढ़िग्रस्त नहीं दिखाई देते हैं। वे अपने युग के राष्ट्रीय नेता राष्ट्र पिता महात्मा गांधी से भी अधिक प्रगतिशील दिखाई देते हैं। चाहे फिर स्त्री मुक्ति का मामला हो या दलितों के अत्याचार का प्रष्न हो। किसानों का मामला हो या जमींदारों के औचित्य का मामला हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचन्द वरदान से लेकर मंगल सूत्र तक उत्तरोत्तर देश की समस्याओं के यथार्थवादी विश्लेषक बनकर हमारे सामने आते हैं। इस विश्लेशण में स्वराज्य की अवधारणा एवं स्वरूप साफ और स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रासंगिकता का सवाल

आज हम आजाद हो गये हैं, बल्कि कहना चाहिए कि आजाद हुए सत्तर साल से भी अधिक हो गये हैं और भारत में लोकतंत्र की स्थापना हो गई है। अतः कोई भी प्रेमचन्द के उपन्यासों की स्वराज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिह्न लगा सकता है और कह सकता है कि हम अब आजाद हो गये हैं, अब इसकी कोई उपयोगिता नहीं है। पर प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्त स्वराज्य की अवधारणा और आकांक्षा की प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि जो समस्याएं प्रेमचन्द ने हमारे सामने रखी थी क्या आजादी मिल जाने से उन सभी समस्याओं को हमने हल कर लिया है? क्या भारत का आम आदमी लोकतंत्र के वास्तविक सुख का भोग कर पा रहा है? क्या स्त्री और पुरूष के लिए समान सामाजिक और नैतिक मानदण्ड स्थापित हो गये हैं? क्या दहजे प्रथा, विवाह की समस्या, स्त्री की आर्थिक परवशता समाप्त हो गयी है? क्या वेश्यावृत्ति समाप्त हो गई है? क्या किसानों को न्याय मिल पा रहा है? क्या हमने सांप्रदायिकता की समस्या का हल निकाल लिया है? क्या अंग्रेजी भाशा का प्रभुत्व समाप्त हो गया है? क्या दलितों को सामाजिक न्याय, समानता और सम्मान मिल पा रहा है? क्या राजनेताओं के स्वार्थ की काली छाया राजनीति से दूर हो गयी है? क्या आम आदमी षोशण और अत्याचार से मुक्त हो गया है? क्या रिश्वत, सरकारी दमन, कुचक्र, पुलिस का अमानुशिक अत्याचार समाप्त हो गया है? क्या श्रमिक पूँजीवादी शोषण से मुक्त हो गया है? क्या हमने हमारा नैतिक और आत्मिक विकास कर लिया है? क्या सूदखोर नहीं रहे? आदि।

यदि हम इन प्रश्न चिह्नों को हल करते हैं, तो निराशा ही हमारे हाथ लगेगी। क्योंकि ये समस्याएं आजादी के साठ साल बाद भी हमारे देश और समाज में नये–नये रूपों में विद्यमान है। आज भी दलितों को सामाजिक न्याय और समानता का अधिकार नही मिल पा रहा है। ''मानने वाले यह मानते हैं कि महात्मा गांधी के कह देने से अछूतों का उद्धार हो चुका है, किन्तु अछूतों की हत्याएं, उनको जीवित अग्नि में भस्म करने तथा उनकी स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के समाचार आज के दैनिक समाचार हैं। दूसरी ओर विधान के धरातल पर अछूतों को कुछ विशेषाधिकार दे देने से वर्ग भेद मिट नहीं गया है।'' सबसे बड़ी विड़म्बना तो यह है कि दलित मुख्यमंत्री (मायावती) बन जाने पर भी वहाँ दलितों पर होने वाले अत्याचार में कोई कमी नहीं आई है। 16 जुलाई 2008 के 'जनसत्ता' में रिजवान मुस्ताक ने 'दलित मुख्यमंत्री के राज में हो रहा है दलितों पर अत्याचार' में उत्तर प्रदेश में हो रहे दलितों पर अमानुशिक अत्याचारों के बारे में लिखा है कि दलित मुख्यमंत्री के राज में दलितों पर अत्याचार हो रहा है। पिछले दिनों रूदौली में थाना क्षेत्र में एक महिला के साथ बलात्कार कर उसको जला दिया गया तो दूसरी तरफ सुबहा थाना क्षेत्र में एक दलित का सिर काट डाला।..... असंद्रा थाने में दबंगों ने दलित को इतना पीटा कि उसकी मौत हो गई। बीते तीन महिनों में दलितों की जमीन पर अवैध कब्जा कर दबंगों के बेचने के मामले के अलावा बलात्कार, लूटपाट और मारपीट के कई मामले सामने आये हैं। लेकिन पुलिस इन गरीबों के साथ इंसाफ करने के बजाय दबंगों और अपराधियों का साथ दे रही है।...बसपा के पदाधिकारी हो या कार्यकर्त्ता वे भी दबंगों की गोद में जा बैठे हैं। जिसकी वजह से गरीबों को इंसाफ नहीं मिल रहा है।'' ये केवल प्रकाश में आये मामले हैं और भी न जाने कितने अत्याचार होते हैं। कितनी बड़ी विड़ंबना है कि आजादी के साठ साल बाद भी हम दलितों को न्याय नहीं दिला पा रहे हैं। अगर हम आजादी, लोकतंत्र और सुराज के बारे में इन दलितों से बात करें तो शायद गोदान की धनिया और गबन के देवीदान के वाक्य ही उनके मुँह से दोहराए जायेंगे।

आज के युग में सरकारी ऋण की सुविधा उपलब्ध है, अगर सूदखोरी की बात करें तो षायद विश्वास नहीं होता कि आज भी सूदखोर कमजोर तबके का खून चूस रहे हैं। लेकिन हमारे समाज की आर्थिक विडम्बना यह है कि आज भी सूदखोरों के आतंक से न जाने कितने कर्जदार आत्म हत्याएं करते हैं। अगर विष्वास न हो तो 23 जून 2008 का 'जनसत्ता' उठाकर देखिये जिसमें आप पढ़ेंगे कि ''गाजीपुर, 23 जून। सूदखोरों के खतरनाक चक्रव्यह में फंसकर लाखों गरीब अभिमन्यु अपनी आर्थिक आजादी और सुख चैन गंवा रहै है। इन सूदखोरों का कहीं कोई पंजीकरण नहीं है। इनका वसूली अभियान इतना अत्याचारी है कि कर्जदारों की आत्म हत्याएं रुक नहीं रही है।...भारी ब्याज पर कर्ज देकर मात्र दस माह में अपनी रकम दुगनी कर लेने वाले इस धंधे में तेजी से नए अमीर उभरते जा रहे हैं।''

सत्तर साल में भारतीय राजनीति का जो माहोल उभर कर सामने आया है, उसने गांधी और प्रेमचन्द के स्वराज्य के सपने को मिट्टी में मिला दिया है। यहाँ आम जनता सुशासन का मात्र स्वप्न देख सकती है। प्रेमचन्द ने राजनीति के जिन दोशों की ओर संकेत किया था आज वे राजनीति में गुण की तरह अपनाए जा रह हैं। जिसके कारण राजनीति लोकतंत्र को विकृत कर आम जन से दूर कर रही है। 'सर्वोदय के साठ साल' लेख में मस्तराम कपूर ने लिखा है कि राजनीति का सारा माहोल काले धन और साम्प्रदायिकता,

क्षेत्रीयता, जाति अस्मिता की संर्कीण भावनाओं से दूषित हो गया है और आम मतदाता भी मान चुका है कि यह माहोल आगे भी ऐसा ही रहेगा। आम जनता में इस प्रकार की निराशापूर्ण धारणा घर कर लेना बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है।

किसानों के लिए अंग्रेज सरकार और स्वतंत्र भारत के प्रशासन और पुलिस के मायने नहीं बदले हैं। आये दिन भ्रष्टाचार, रिश्वत, लाठी चार्ज, गोली काण्ड, किसान आत्म हत्याओं के समाचार समाचार–पत्रों की सुर्खियाँ होते हैं। अगर विष्वास न हो तो 21 जुलाई 2008 का यह समाचार देखिए जो वास्तव में अंग्रेजों के जमाने का समाचार लगता है– 'संगीनों के साए में प्रशासन ने छीन लिए किसानों के खेत' लखनऊ, 20 जुलाई। (जनसत्ता) लखनऊ के चिनहट में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट के निर्माण के लिए शनिवार को डेढ़ हजार पुलिस कर्मचारियों की मौजूदगी में ढ़ाई सौ किसानों के 120 हेक्टेयर खेतों को जबरन खाली करा लिया गया। ....विरोध करने की जुर्रत करने वाले किसानों को पुलिस ने फिंकवा दिया और खेतों पर बुलडोजर चला दिये।'' एसे समाचारों, घटनाओं को देखकर निस्संदेह प्रेमचन्द की स्वराज्य चेतना एवं कृषक–मजदूर जाग्रति के सवाल बेहद प्रासंगिक हो उठते हैं। आज किसानों और मजदूरों में प्रेमचन्द द्वारा जगाई चेतना की आवश्यकता है। स्वतंत्रता की वर्ष गांठ मनाते हुए हमें सोचने को मजबूर होना पड़ता रहा है कि आखिर ''कितने स्वाधीन है हम'' अतः प्रेमचन्द की स्वराज्य चेतना और अवधारणा आज बेहद प्रासंगिक है, इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती।

भारतीय समाज में आज भी स्त्री के स्थिति दोयम दर्जे की ही है। आज भी उसे पुरूष प्रधान समाज के आतंक के साए में जीने को विवश होना पड़ रहा है। हमारे सामन्ती संस्कार उसकी मुक्ति पर कई सवाल खड़े किये हुए हैं। दहेज ने तो आज सामाजिक अभिशाप का रूप धारण कर लिया है। समाज जितनी उन्नति कर आगे बढ़ रहा है। दहेज, प्रताड़ना, घरेलू हिंसा बढ़ती जा रही है। प्रेमचन्द ने वेष्यावृत्ति के प्रश्न को बार–बार उठाया है, पर यह समस्या और भी अधिक विकृत रूप में हमारे सामने खड़ी है।

साम्प्रदायिकता की समस्या आज भारत की शक्ति, षांति, सुरक्षा, एकता एवं अखण्डता के लिए सबसे बड़ा खतरा बनी हुआ है। इस समस्या का मूल कारण प्रेमचन्द के जमाने में भी राजनीतिक ही था और आज भी संर्कीण राजनीतिक ही है। यह साम्प्रदायिकता न केवल सदियों से साथ रहते आ रहे हिन्दू–मुसलमान के बीच शत्रुता का भाव भर रही है बल्कि देश को हिंसा और आतंकवाद की आग में भी झोंक रही है। इस जातिवादी जहर ने भारत के सामाजिक जीवन को विशैला बना दिया है। प्रेमचन्द ने दोनों वर्गों को षांति के साथ रहने की सलाह दी थी, और कहा था कि हमें न मुसलमान बनना है, न हिन्दू बनना है, हमें हिन्दुस्तानी बनकर रहना चाहिए, पर किसी ने उस पर विचार नही किया। आज हमें प्रेमचन्द के विचारों का अनुसरण करने की आवष्यता है। आज के परिप्रेक्ष्य प्रेमचन्द के विचार नितांत प्रासंगिक और बेहद प्रेरणास्पद हैं।

निष्कर्ष :– इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की स्वराज्य की अवधारणा आज भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को सुखद एवं लोकतंत्र योग्य बनाने तथा

आम आदमी को स्वतंत्रता और सुराज की अनुभूति कराने के लिए बेहद उपयोगी एवं प्रासंगिक है। आज आवष्यकता है, उस जन चेतना की जगाने की, जो प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से दिखाई।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. प्रेमचन्द और उसका युग– डा. राम विलास शर्मा
2. हिन्दी का गद्य साहित्य– डॉ. रामचन्द्र तिवारी
3. प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन –आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी
4. प्रेमचन्द और गांधीवाद– रामदीन गुप्त एम. ए.
5. प्रेमचन्द– नरेन्द्र कोहली
6. जनसत्ता' 16 जुलाई 2008
7. जनसत्ता' 23 जून, 2008
8. जनसत्ता 21 जुलाई 2008
9. जनसत्ता' 14 अगस्त 2008

———————————————